

## समकालीन कविता में सामाजिक सापेक्षता की अभिव्यक्ति

(नीलेश रघुवंशी के काव्य संकलनों के संदर्भ में)

डॉ. प्रिया ए.

असिस्टेंट प्रोफेसर  
हिन्दी विभाग, के.जी. कॉलेज  
पाम्पाडी, कोट्टयम, केरल-686502  
priyauday111@gmail.com

**समकालीन** हिन्दी कविता के क्षेत्र में नीलेश रघुवंशी का नाम महत्वपूर्ण है। उनकी कविता में मानवीय जीवन के प्रति संवेदना का स्वर बुलंद होता है। वैश्वीकृत परिवेश में समाज को सकारात्मक ढंग से जीने की ऊर्जा अपनी कविताओं के द्वारा नीलेश रघुवंशी प्रदान करती हैं। हमारे आसपास, दैनिक जीवन के कार्यकलापों को मामूली एवं सहज ढंग से वे अभिव्यक्त करती हैं। नीलेश रघुवंशी की कविताओं में मानवीय मूल्यों की टूटन, आस्था-अनास्था का स्वर, उत्तर-आधुनिक परिवेश से जूझते मनुष्य का तनाव, माँ-पिता-घर जैसे गहरे संवेदनात्मक विषयों को स्थान मिलता है।

उत्तराधुनिक समय में सामाजिक जीवन विसंगतियों एवं अन्तर्विरोधों से भयावह हो उठा है। वैश्वीकरण के चुनौती पूर्ण संदर्भ में कई प्रकार के मानवीय संकटों से आम मनुष्य त्रस्त होता है। "नई सदी" नामक कविता वर्तमान समय के दहशत को प्रस्तुत करती है-

"आतंक और बर्बरता से शुरू हुई नई सदी  
धार्मिक उन्माद और बर्बर हमले बने पहचान इक्कीसवीं सदी के  
बदा था इक्कीसवीं सदी की किस्मत में  
मरते जाना हर दिन बेगुनाह लोगों का  
हज़ार बरसों पीछे ढकेलने का षड्यंत्र! आखिर किया किसने?  
किसने? किसने ढकेला जीवन के बुनियादी हकों को हाशिए पर?"<sup>1</sup>

प्रस्तुत कविता में इक्कीसवीं सदी के आतंक का परिवेश देखने को मिलता है। धार्मिक-सांप्रदायिकता के नाम पर सब कहीं हमले हो रहे हैं। सांप्रदायिक हमलों के कारण बेगुनाहों की हत्या होती है। वर्चस्ववादी ताकतें आम मानव पर अपना हक जमा रही हैं। आम मनुष्य को अपनी बुनियादी ज़रूरतों से वंचित किया गया है। सांप्रदायिक भेदभाव के कारण दलितों को और भी हाशिए पर धकेल दिया गया है।

भूमंडलीय साम्राज्यवादी ताकतों का शिकंजा जीवन के हर क्षेत्र को जकड़ रहा है। इसी वजह से समाज की जनता को; मानवीय मूल्यों का हास, अलगाव, अकेलापन जैसे विद्रूपताओं का सामना करना पड़ता है। इस विकलता को समाज का हर मनुष्य आज अनुभव कर रहा है। ऐसी सच्चाई की हालत को "अजनबी शहर" नामक कविता व्यक्त करती है-

"नया शहर जैसे नई दुनिया  
न शाम आती न होती है सुबह  
न रोशनी न घरोंदे न आकाश न पंछी।  
बहुत अजनबी है यह शहर।  
अजनबी शहर का हर पेड़ भी अजनबी-सा  
अजनबी-से कतराते से फूल  
इस अजनबी शहर में ढूँढती हूँ  
अपने शहर-सी कोई गली।"<sup>2</sup>

आधुनिक मनुष्य के जीवन की एक सच्चाई है - अजनबीपन। आत्मीयता के अभाव में सब कहीं अजनबीपन महसूस होता है। मानवीय रिश्तों में दरारें देखने को मिलती हैं। महानगरीय परिवेश में प्रति-स्पर्धा के कारण लोग स्वार्थता से, मतलबीपन से व्यवहार करते हैं। आत्मीयता का संबन्ध अब नहीं रहे।

इक्कीसवीं सदी भूमंडलीकरण की सदी है। प्रौद्योगिकी की सदी है। इस सदी में प्रौद्योगिकी के विकास ने मानव समाज को बहुत कुछ दिया। जीवन को सरल एवं सुविधाओं से पूर्ण बनाया। जैसे कि कंप्यूटर, इण्टरनेट, मोबाईल, इलेक्ट्रॉनिक साधनों का उपयोग एवं मनोरंजन के साधन। इस प्रकार इक्कीसवीं सदी की उपलब्धियों की सूची काफी लंबी है। पर विडंबनात्मक बात यह है कि इसी सुविधाग्रस्त सदी ने मनुष्य से बहुत कुछ छीन लिया। मानव की संवेदनशीलता अब कहीं खो गयी है। मानव संबन्धों की एक नयी परिभाषा को रचा गया। घर-परिवार टूटने लगे। घर के सदस्यों के बीच बातचीत एवं आत्मीयता कम होने लगी। इसी टूटने के परिवेश को "घर" नामक कविता शब्दबद्ध करती है-

"घर को टूटते किसने देखा / धीरे-धीरे टूटता गया घर  
भरभराकर नहीं टूटा / झनझनाहट भी नहीं हुई  
कोई आवाज़-अहसास नहीं टूटने का  
आँख नहीं भरी, भर आया गला, टूटा इस तरह घर

घर के टूटने के कारण दबे पड़े हैं भीतर  
कोई एक नहीं, जानते हैं सब, टूटा कैसे घर  
कहानी-किस्सों के घर की तरह होता चला जा रहा है अपना घर  
फिल्मों की तरह एकदम।"<sup>3</sup>

यह कविता समाज पर मीडिया के प्रभाव का जो आधिक्य है, उसका खुलासा कर रही है। नीलेश रघुवंशी का कहना है कि घर का टूटना अब फिल्म जगत की तरह कृत्रिमता के कारण ही हुआ है।

उत्तर-आधुनिक समय में मीडिया एवं सूचना प्रौद्योगिकी ने मिलकर पूरी दुनिया में एक लुभावनी दुनिया को सजाया है। आम मनुष्य ऐसी चकाचौंध वाली दुनिया की ओर सदा आकृष्ट रहता है। इसी दौर में उपभोक्तावादी युग का आरंभ हुआ। उपभोक्तावाद में विज्ञापन जगत का कुप्रभाव पूरी दुनिया में व्याप्त है। विज्ञापन जगत के कृत्रिम माया संसार के माहौल को "विज्ञापन में किसान" नामक कविता यों उकेरती है-

"लहलहाते खेत, आसमान को छूते...  
खड़ी फसलें, मायके आई लड़कियों की तरह खिलखिलातीं...  
लिपे-पुते घर, जिनके भीतर से  
दही मथने और गेहूँ फटकने का सुरीला शोर  
ट्रैक्टर पर हाथ में मोबाइल लिए किसान  
ट्राली अनाज के बोरो से लदी  
मंडी में मिलते अनाज के सही दाम  
खिल-खिल जातीं बाछें घर भर की  
कितना खुशहाल जीवन, विज्ञापन में किसान का!"<sup>4</sup>

किसानी संस्कृति को भारतीयता की पहचान मानी जाती है। पर वर्तमान के विकल परिवेश में किसानों की संस्कृति क्षरण के कगार पर खड़ी है। पुराने समय में खेत, हल, बैल आदि किसान के लिए मुख्य थे। पर आधुनिक समय का किसान मशीनी सभ्यता से अपना संबन्ध जोड़ता है। वास्तव में किसान का जीवन अत्यंत पीड़ा जनक होता है। पर विज्ञापन का किसान खुशहाली का जीवन चित्र उपस्थित करता है। यथार्थ जगत एवं विज्ञापन के जगत में बड़ा अंतर होता है। नीलेश रघुवंशी ने इस रचना के द्वारा कृत्रिम वातावरण की सच्चाई को व्यक्त किया है।

वैश्वीकरण के संदर्भ में औद्योगिकीकरण की छाया सब कहीं मँड़रा रही है। इस समय को औद्योगिक क्रांति का युग कहा जाता है। इसके कारण मानव और प्रकृति के बीच का संबन्ध टूट गया है। बड़े तादाद में पेड़ों को काटा जाता है। जंगल को उजाड़ने की कोशिशें हो रही हैं। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को देवता माना जाता है। पर आधुनिक समय में प्रकृति का शोषण हो रहा है। सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन हो रहा है। नीलेश रघुवंशी की कविता "जंगल और जड़" में जंगल के विनाश को यों दर्ज करती हैं-

"इमारत के ऊपर इमारत  
खाई के नीचे खाई  
दूर-दूर तक फैला कांक्रीट का जंगल  
आएगा एक दिन ऐसा आएगा  
जब हमें हमारी जमीन मिलेगी वापस  
सीमेंट की टंकी में पानी पीती चिड़िया से  
कहा पीपल की फूटती जड़ ने।"<sup>5</sup>

इस कविता के तहत कवयित्री ने विकास एवं बदलाव के नाम पर होनेवाले अत्याचार को स्पष्ट किया है। अपनी ज़मीन से बेदखल होने के लिए अभिशप्त आदिवासी वर्ग की पीड़ा यहाँ देखने को मिलती है। आदिवासी वर्ग का जीवन जंगल में कटता है। पर वर्तमान समय में विकास की प्रगति ने उन्हें अपने संसाधनों से; जल-जंगल-ज़मीन से विस्थापित कर दिया है। पूर्ण रूप से अपनी संस्कृति से उन्हें बेदखल किया गया है। वैश्वीकृत दुनिया की सबसे बड़ी समस्याओं में एक है - बाज़ारीकरण से जुड़ी समस्याएँ। बाज़ार की संस्कृति आज पूरी दुनिया को निगल चुकी है। उदारीकरण तथा निजीकरण के फलस्वरूप पैदा हुए बाज़ारवाद ने दुनिया में अनेक नए परिवर्तनों को जन्म दिया है। हमारी आर्थिक संस्कृति को ही नहीं बल्कि सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर भी अनेक प्रकार के बदलाव लाने में बाज़ारवादी व्यवस्था सक्षम हुई है। मानवीय संवेदनाओं और भावनाओं से इसका कोई सरोकार नहीं है। बाज़ारीकरण का संबन्ध बिक्री से एवं मुनाफावादी दृष्टिकोण से ही संपन्न होता है। बाज़ार के हस्तक्षेप के कारण मानव अस्तित्व आज गहरे संकट में है। बाज़ारवाद ने हमारे देश की सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक एवं नैतिक संरचना को विकृत किया है। बाज़ारीकरण के दौर को "किसान" नामक कविता यों खींचती हैं-

"चारों ओर खेती-किसानी की बातें / दब जातीं जिसमें उसकी कराह  
शोरगुल ऐसा कानफोड़ कि हाँ बदल जाती ना में  
गाँव में लहकता गरजता गाय बछेड़ को गरियाता  
बाखर और अटारी में बमुश्किल खीसे से पैसे निकालता  
और बाज़ार में उलट जाती पूरी जेब  
लुटा-पिटा अगली फसल की आस में गाँव को लौटता  
ये हमारे समय का किसान है न कि किसान का समय है ये।"<sup>6</sup>

पूँजीवाद का एक नया अवतार है बाज़ारवाद। ऐसे कठिन समय में किसान वर्ग का जीवन बदहाली की ओर जा रहा है। कवयित्री का मानना है कि यह दुःस्मय किसान के लिए हितकारी नहीं है; बल्कि इस कठिन समय में किसान को विवश होकर जीवन बिताना पड़ता है। बाज़ार के बुरे प्रभाव ने मनुष्य को मात्र एक वस्तु का दर्जा दिया है। किसान एवं उसकी फसल बुरी हालत में है।

आर्थिक विकास नीतियाँ सब कहीं चल रही हैं। पर समाज के निम्न वर्ग को इस विकास से कोई लाभ नहीं मिला है। धनाढ्य-सुविधाभोगी वर्ग के लिए ये विकास नीतियाँ लाभदायक होती हैं। आम मनुष्य को बेरोज़गारी के संकट का शिकार होना पड़ता है। इसी तथ्य की ओर "जीवन परिचय" नामक कविता इशारा कर रही हैं-

"अब बताइए आप ही लोग बताइए  
ऐसे आर्थिक समय में भी  
अगर आप बेरोज़गार हैं तो मुझे आपसे कुछ नहीं कहना!  
बस्स करो बाबा  
अच्छा ही है जो इस समय बहन यह सब नहीं सुन रही  
इतने बड़े आकाश में  
एक टुकड़ा आकाश भी नहीं उसके पास।"<sup>7</sup>

वर्तमान समय की बेहाल परिस्थितियों में आज का आम आदमी कहीं खो गया है। वह अपनी निजी ज़रूरत को भी पूरा करने में असमर्थ हो जाता है। समाज में मध्यवर्गीय और निम्न वर्ग का इंसान जीवन की आपाधापी में हमेशा पिसता है। महानगर के परिवेश को प्रस्तुत करते हुए कवयित्री इस भयावहता का परिचय देती है। "लोग कहते हैं" नामक कविता की पंक्तियाँ आम आदमी की पीड़ा को यों प्रस्तुत करती हैं-

"विदिशा ज़िले की समस्याओं पर आधारित वृत्तचित्र में  
हाय-हाय कर रहे हैं लोग  
थरथराती आवाज़ में बयान करते अपनी बदहाली  
कितने मासूम हैं लोग  
जितनी मारक उनकी बदहाली उतनी ही मासूम उनकी बयानी  
एक दूसरे को ठेलते हुए  
कोई बेतवा के पानी को लेकर रो रहा है तो कोई उद्योगधंधों को  
कोई पानी बिजली सड़क और अतिक्रमण पर कर रहा है हाय-हाय  
मज़ूर मजूरी के लिए रो रहे हैं पढ़े-लिखे नौकरी के लिए"<sup>8</sup>

महानगरीय जीवन परिवेश में बेरोज़गारी एक ज्वलंत समस्या बनकर उठ खड़ी हुई है। मज़दूर वर्ग को काम एवं मज़दूरी मिलना कठिन हो गया है और पढ़े-लिखे वर्ग के लिए अच्छी नौकरी मिलना भी मुश्किल हो गया है। ऐसे कटु जीवन यथार्थ को उपरोक्त पंक्तियाँ प्रस्तुत करती हैं।

महानगरीय परिवेश की त्रस्त हालत में जीने के लिए अभिशप्त एक गरीब परिवार की गतिविधियों का वर्णन करती है "ढाबा" शीर्षक कविता। "ढाबा" शीर्षक कविता के आठ अंश गरीब परिवार के पूरे

जीवनवृत्त को व्यक्त करते हैं। ढाबे को केन्द्र में रखकर हिन्दी में शायद इससे पहले कोई कविता नहीं लिखी गयी।

"मोटरोँ के शोर और  
बैलगाड़ियों की धीमी रफ़्तार के बीच था ढाबा।  
सड़क किनारे लगा हैंडपंप  
आसपास जिसके घूमती रहती गायेँ  
खड़े रहते किनारे हाथठेले और रिक्शे  
टूटी-फूटी बेंचें  
जिन पर बैठ बतियाते मंडी से आये थके-हारे लोग।"<sup>9</sup>

सड़क किनारे मोटरोँ के शोर और बैलगाड़ियों की धीमी रफ़्तार के बीच बसे हुए एक मामूली गरीब मनुष्य का जीवन चित्र इसमें बताया गया है। इस कविता के माध्यम से एक पूरी महानगरीय दुनिया का रूपक हमारे सामने उपस्थित होता है।

वैश्वीकरण के विकल वातावरण में कविताओं के माध्यम से रचनाकार परम्परागत मूल्यों की वापसी की चाह करते हैं। आधुनिकीकरण एवं विश्व बाज़ार ने मिलकर हमारे समाज की सांस्कृतिक पहचान और स्वत्व को भी चकनाचूर कर लिया है। सांस्कृतिक धरोहर लुप्त हो गये हैं। खोयी हुई चीज़ों को कवयित्री अपनी रचनाओं में स्थान देना चाहती हैं। "सौ बरस का पेड़" नामक कविता इसी कोशिश का परिणाम है-

"सब चुप थे उस दिन  
पिता बहुत असहाय और अपराधी  
स्मृति में दादा-चढ़ना सिखाते पेड़ पर  
हाथों में लिए पिलाते नारियल-पानी  
माँ ने जलाया दीया  
आई थी जब पहली बार, दिया था यही पेड़ दादा ने उसे  
दिप-दिप करती लौ में लाल-लाल आँखें माँ की  
पेड़ नहीं गया आज-गया सौ बरस का धीरज।"<sup>10</sup>

घर का स्मृति दंश इस कविता में विभिन्न परिस्थितियों से उत्पन्न है। कवयित्री की स्मृति की जड़ें परम्परागत, सांस्कृतिक जीवन-व्यवहार, रहन-सहन, रीति-रिवाज़ों की तरलता से सिंचित रहती है। अतीतराग की भावना का सहारा लेकर कवयित्री सांस्कृतिक मूल्यों की पुनःप्रतिष्ठा करना चाहती है। यह एक सुखद हकीकत है।

नीलेश रघुवंशी के काव्य संकलनों में कवयित्री के अंतर्द्वंद्व को व्यक्त किया है। वैश्वीकृत समय में सब कहीं मूल्यच्युति देखने को मिलती है। इससे बचने के लिए एक मात्र तरीका है - सांस्कृतिक-ऐतिहासिक वातावरण की पुनःप्राप्ति। इन तथ्यों की पुनःप्राप्ति के द्वारा यथार्थ को देखने का परिप्रेक्ष्य पाठकों के सामने

उपस्थित होता है। नीलेश रघुवंशी की कविता अपने समय से सीधे साक्षात्कार करती हुई अपने आत्मानुभव से समाज को सचेत करती हुई उन्हें परिवर्तन का नया संदेश देती है। कविता के माध्यम से समाज को नए उम्मीद का संदेश "इंटरव्यू में सवाल" नामक कविता द्वारा उद्घाटित है-

"क्या कविता इस दुनिया को बदल पाएगी?  
कविता से ही बची है यह दुनिया जीने लायक  
संतुष्ट नहीं सामने वाला उसे सीधा जवाब चाहिए  
हाँ-हाँ कविता ही बदलेगी ये दुनिया..."<sup>11</sup>

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि इक्कीसवीं सदी का समय अनेक समस्याओं व प्रश्नों के साथ हमारे समक्ष उपस्थित हैं। वैश्वीकृत-त्रस्त परिवेश में नीलेश रघुवंशी की कविताएँ उदासीन जनता में नयी उम्मीद जगाने में सक्षम सिद्ध होती हैं। कवयित्री का आशावादी स्वर विडंबनाओं एवं विसंगतियों के बीच पिसनेवाले मनुष्य के जीवन में स्फूर्ति व उत्साह का संप्रेषण करता है। अपने सभी काव्यसंकलनों में उन्होंने सामाजिक पक्षधरता को बखूबी से निभाने का प्रयास किया है।

#### संदर्भ :

1. नीलेश रघुवंशी - पानी का स्वाद - पृ. 61
2. नीलेश रघुवंशी - घर-निकासी - पृ. 64
3. नीलेश रघुवंशी - पानी का स्वाद - पृ. 20
4. वही - पृ. 63
5. नीलेश रघुवंशी - अंतिम पंक्ति में - पृ. 56
6. वही - पृ. 58
7. वही - पृ. 85
8. वही - पृ. 99
9. नीलेश रघुवंशी - घर-निकासी - पृ. 100
10. नीलेश रघुवंशी - पानी का स्वाद - पृ. 35
11. नीलेश रघुवंशी - अंतिम पंक्ति में - पृ. 75